

उग्रसेनं तथा राज्ये धृत्वा प्राज्ये गुणोज्ज्वलम्। जरासन्धं द्विधा कृत्वा त्रिखण्डेशो बभूव च ॥१४९॥
 श्रीमन्महापुराणे च कथासौ विस्तरेण वै। ज्ञातव्या श्रीजिनन्द्रोक्तधर्मशास्त्रविचक्षणैः ॥१५०॥
 इत्युच्चैर्बहुरागरोषवशतः के के न नष्टा स्वयं लोकेधर्मपराङ्मुखा जडधियो दुष्कर्मजालाश्रिताः।
 ज्ञात्वैवं बुधसत्तमैः शुचितमैर्धर्मोजिनेन्द्रोदितः संसेव्यो भवसिन्धुतारणपरः स्वर्गापवर्गप्रदः ॥१५१॥

इति कथाकोशे वसिष्ठमुनेः कथा समाप्ता।

४५. लक्ष्मीमत्या मानकथा

यस्य ज्ञानं जगद्बन्धोर्लोकालोकप्रकाशकम्। श्रेयसे तं जिनं नत्वा वक्ष्ये मानकथानकम् ॥१॥
 देशेऽत्र मगधे ख्याते लक्ष्मीग्रामे मनोहरे। सोमदेवद्विजस्यासील्लक्ष्मीमत्यभिधा प्रिया ॥२॥
 रूपसौभाग्यसल्लक्ष्मीर्यौवनोन्मत्तमानसा। सदा विप्रत्वगर्वेण मण्डिता मण्डनप्रिया ॥३॥

डाला और अर्धचक्री हो त्रिखण्डाधिपति कहलाए। वासुदेव ने उसी समय कंस के पिता उग्रसेन को लाकर राज्यसिंहासन पर अधिष्ठित किया। इसके बाद श्री कृष्ण ने जरासन्ध पर चढ़ाई करके उसे भी कंस का रास्ता बतलाया और आप फिर अर्धचक्रवर्ती होकर प्रजा का नीति के साथ शासन करने लगा। यह कथा प्रसंगवश यहाँ संक्षेप में लिख दी गई हैं, जिन्हें विस्तार के साथ पढ़ना हो उन्हें हरिवंशपुराण का स्वाध्याय करना चाहिए ॥१४८-१५०॥

जो क्रोधी, मायाचारी, ईर्ष्या करने वाले, द्वेष करने वाले और मानी थे, धर्म के नाम से जिन्हें चिढ़ थी, जो धर्म से उल्टा चलते थे, अत्याचारी थे, जड़बुद्धि थे और छोटे कर्मों की जाल में सदा फँसे रहकर कोई पाप करने से नहीं डरते थे ऐसे कितने मनुष्य अपने ही कर्मों से काल के मुँह में नहीं पड़े? अर्थात् कोई बुरा काम करे या अच्छा, काल के हाथ तो सभी को पड़ना ही पड़ता है। पर दोनों में विशेषता यह होती है कि एक मरे बाद भी जन साधारण की श्रद्धा का पात्र होता है और सुगति लाभ करता है और दूसरा जीते जी भी अनेक तरह की निन्दा, बुराई, तिरस्कार आदि दुर्गुणों का पात्र बनकर अन्त में कुगति में जाता है। इसलिए जो विचारशील है, सुख प्राप्त करना जिनका ध्येय है, उन्हें तो यही उचित है कि वे संसार के दुःखों का नाशकर स्वर्ग या मोक्ष का सुख देने वाले जिनभगवान् का उपदेश किया, पवित्र जिनधर्म का सेवन करें ॥१५१॥

४५. लक्ष्मीमती की कथा

जिन जगद्बन्धु का ज्ञान लोक और अलोक का प्रकाशित करने वाला है जिनके ज्ञान द्वारा सब पदार्थ जाने जा सकते हैं, अपने हित के लिए उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर मान करने के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है। मगधदेश के लक्ष्मी नाम के सुन्दर गाँव में सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्री का नाम लक्ष्मीमती था। लक्ष्मीमती बहुत सुन्दरी थी। अवस्था उसकी जवान थी। उसमें सब गुण थे, पर एक दोष भी था। वह यह कि इसे अपनी जाति का बड़ा अभिमान था और यह सदा अपने को शृंगारने-सजाने में मस्त रहती थी ॥१-३॥

एकदा सोमदेवोसौ ब्राह्मणो धर्मवत्सलः। पक्षमासोपवासादितपोरत्नाकरं मुनिम् ॥४॥
 समाधिगुप्तनामानं चर्याकाले समागतम्। भक्त्या संस्थाप्य तं शीघ्रं दानार्थं त्रिजगद्धितम् ॥५॥
 हे प्रिये भोजयेत्युच्चैर्मुनीन्द्रं गुणशालिनम्। प्रोक्त्वेति कार्यव्यग्रत्वान्निर्गतो गेहतः स्वयम् ॥६॥
 साध्यासने स्थिता मूढा पश्यन्ती दर्पणे मुखम्। स्वगर्वेण मुनेस्तस्य दत्त्वा दुर्वचनानि च ॥७॥
 विचिकित्सां पुनः कृत्वा द्वाःकपाटं पिधाय च। तस्थौ दुष्टाशया कष्टं हा पापं किमतः परम् ॥८॥
 मुनीन्द्रोपि जगद्वन्द्यो गतश्चारित्रमण्डितः। युक्तं पापात्मनां याति निधानं च गृहागतम् ॥९॥
 तत्पापात्सप्तमे घस्त्रे महोदुम्बरकुण्डिनी। संजाता ब्राह्मणी मानाम्मुनेर्निन्दा न शान्तये ॥१०॥
 सर्वैस्त्यक्ता जनैः पापात्तत्कष्टं सोढुमक्षमा। अग्निं प्रविश्य सा लक्ष्मीमती मृत्वार्त्तमानसा ॥११॥
 तत्रैव रजकस्याभूदुर्गदभी पापकर्मणा। दुग्धपानं विना मृत्वा जाता तत्रैव शूकरी ॥१२॥
 शूकरी क्रूरपापेन पुनस्तत्रैव कुक्कुरी। सापि दावाग्निना दग्धा कुक्कुरी प्राणहारिणा ॥१३॥
 अहो हालाहलं घोरं वरं जन्मैकदुःखदम्। भक्षितं न पुनर्निन्दा मुनीनां शीलशालिनाम् ॥१४॥
 पत्तने भृगुकच्छाख्ये नर्मदारुनदीतटे। काणा नाम्नी सुदुर्गन्धा साभूद्धीवरपुत्रिका ॥१५॥
 मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा। जातिगर्वो न कर्त्तव्यस्ततः कुत्रापि धीधनैः ॥१६॥

एक दिन पन्द्रह दिन के उपवास किए हुए श्रीसमाधिगुप्त मुनिराज आहार के लिए उसके यहाँ आए। सोमशर्मा ने उन्हें आहार कराने के लिए भक्ति से ऊँचा आसन पर विराजमान कर और अपनी स्त्री को उन्हें आहार करा देने के लिए कहकर आप कहीं बाहर चला गया। उसे किसी काम की जल्दी थी ॥४-६॥

इधर ब्राह्मणी बैठी-बैठी काँच में अपना मुख देख रही थी। उसने अभिमान में आकर मुनि को बहुत सी गालियाँ दीं, उनकी निन्दा की और किवाड़ बन्द कर लिए। हाय! इससे अधिक और क्या पाप होगा? मुनिराज शान्त-स्वभावी थे, तप के समुद्र थे, सबका हित करने वाले थे, अनेक गुणों से युक्त थे और उच्च चारित्र के धारक थे, इसलिए ब्राह्मणी की उस दुष्टता पर कुछ ध्यान न देकर वे लौट गए। सच है, पापियों के यहाँ आई हुई निधि भी चली जाती है। मुनि निन्दा के पाप से लक्ष्मीमती के सातवें दिन कोढ़ निकल आया। उसकी दशा बिगड़ गई। सच है- साधु-सन्तों की निन्दा-बुराई से कभी शान्ति नहीं मिलती। लक्ष्मीमती की बुरी हालत देखकर घर के लोगों ने उसे घर से बाहर कर दिया। यह कष्ट पर कष्ट उससे न सहा गया, सो वह आग में बैठकर जल मरी। उसकी मौत बड़े बुरे भावों से हुई। उसी पाप से वह इसी गाँव में एक धोबी के यहाँ गधी हुई इस दशा में इसे दूध पीने को नहीं मिला। यह मरकर सूअरी हुई। फिर दो बार कुत्ती की पर्याय उसने ग्रहण की। इसी दशा में वह वन में दावाग्नि से जल मरी। अब वह नर्मदा नदी के किनारे पर बसे हुए भृगुकच्छ गाँव में एक मल्लाह के यहाँ काणा नाम की लड़की हुई। शरीर उसका जन्म से ही बड़ा दुर्गन्धित था। किसी की इच्छा उसके पास तक बैठने की नहीं होती थी। देखिये अभिमान का फल कि लक्ष्मीमती ब्राह्मणी थी, पर उसने अपनी जाति का अभिमान कर अब मल्लाह के यहाँ जन्म लिया। इसलिए बुद्धिमानों को कभी जाति का गर्व न करना चाहिए ॥७-१६॥

तत्र नावा जनान्नित्यं सा समुत्तारयत्यलम्। एकदा तं समालोक्य मुनीन्द्रं ज्ञानलोचनम् ॥१७॥
 नदीतीरे प्रणम्योच्चैः संजगौ त्वं मया प्रभो। क्वापि दृष्टोसि तच्छ्रुत्वा तेनोक्तं पूर्ववृत्तकम् ॥१८॥
 त्वं बालिके पुरा लक्ष्मी-ग्रामे लक्ष्मीमती कुधीः। सोमदेवद्विजस्योच्चैर्भामिनी मानवञ्चिता ॥१९॥
 कृत्वा मे निह्वं मुग्धे महाकष्टेन पीडिता। अग्नौ मृत्वा पुनर्जाता गर्दभी शूकरी क्रमात् ॥२०॥
 तत्रैव कुक्कुरी भूत्वा कुक्कुरी च ततो मृता। अत्र जातासि दुर्गन्था धीवरीकुक्षिसंभवा ॥२१॥
 इत्यादिकं समाकर्ण्य सैव धीवरबालिका। ततो जातिस्मरी भूत्वा नत्वा तं मुनिनायकम् ॥२२॥
 भो मुने पापकर्माहं संजगादेति दुःखिता। रक्ष रक्षात्र योगीन्द्र मां पतन्तीं कुयोनिषु ॥२३॥
 ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्। धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥२४॥
 संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः। मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥२५॥
 कुण्डाख्यनगरे राजा भीष्मो राज्ञी यशस्वती। तयोः पुत्री बभूवासौ रूपिणी रूपमण्डिता ॥२६॥
 वासुदेवेन सा कन्या परिणीता गुणोज्ज्वला। पुण्येन सर्वजन्तूनां भवेयुः सम्पदोखिलाः ॥२७॥

सुकुलजन्मयशोवरसम्पदा सकलशास्त्रमतिर्बुधसंगमः।

सुगतिरद्भुतशर्म शिवोद्भवं भवति जैनमतोत्तमसेवनात् ॥२८॥

इति कथाकोशे लक्ष्मीमत्या मानकथा समाप्ता।

एक दिन काणा लोगों को नाव द्वारा नदी पार करा रही थी। उसने नदी किनारे पर तपस्या करते हुए उन्हीं मुनि को देखा, जिनकी कि लक्ष्मीमती की पर्याय में इसने निन्दा की थी। उन ज्ञानी मुनि को नमस्कार कर उनसे पूछा-प्रभो, मुझे याद आता है कि मैंने कहीं आपको देखा है? मुनि ने कहा बच्ची, तू पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था और सोमशर्मा तेरा भर्ता था। तूने अपने जाति के अभिमान में आकर मुनिनिन्दा की। उसके पाप से तेरे कोढ़ निकल आया। तू उस दुःख को न सहकर आग में जल मरी। इस आत्महत्या के पाप से तुझे गधी, सुअरी और दो बार कुत्ती होना पड़ा। कुत्ती के भव से मरकर तू इस मल्लाह के यहाँ पैदा हुई है। अपना पूर्व भव का हाल सुनकर काणा को जातिस्मरण हो गया, पूर्वजन्म की सब बातें उसे याद हो उठीं। वह मुनि को नमस्कार कर बड़े दुःख के साथ बोली-प्रभो! मैं बड़ी पापिनी हूँ। मैंने साधु महात्माओं की बुराई कर बड़ा ही नीच काम किया है। मुनिराज, मेरी पाप से अब रक्षा करो, मुझे कुगतियों में जाने से बचाओ तब मुनि ने उसे धर्म का उपदेश दिया। काणा सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई उसे बहुत वैराग्य हुआ। वह वहीं मुनि के पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिका हो गई। उसने फिर अपनी शक्ति के अनुसार खूब तपस्या की, अन्त में शुभ भावों से मरकर वह स्वर्ग गई। यही काणा फिर स्वर्ग से आकर कुण्ड नगर के राजा भीष्म की महारानी यशस्वती के रूपिणी नाम की बहुत सुन्दर कन्या हुई। रूपिणी का ब्याह वासुदेव के साथ हुआ। सच है, पुण्य के उदय के जीवों को सब धन-दौलत मिलती है ॥१७-२७॥

जैन धर्म सबका हित करने वाला सर्वोच्च धर्म है। जो इसे पालते हैं, वे अच्छे कुल में जन्म लेते हैं, उन्हें यश-सम्पत्ति प्राप्त होती है, वे कुगति में न जाकर उच्च गति में जाते हैं और अन्त में मोक्ष का सर्वोच्च सुख लाभ करते हैं ॥२८॥

४६. मायाविनी-पुष्पदत्तायाः कथा

प्रणम्य त्रिजगन्नाथं श्रीजिनं शर्मकोटिदम् । मायाशल्यकथां माया-विनाशाय गदाम्यहम् ॥१॥
 अत्राभूदजितावर्तपत्तने सुचिरंतने । पुष्पचूलो महाराजः पुष्पदत्ता प्रियाभवत् ॥२॥
 एकदासौ महीनाथो राज्यं कुर्वन्निजेच्छया । अमरादिगुरोः पार्श्वे मुनीन्द्रस्य महाधियः ॥३॥
 धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् । त्रिधा वैराग्यमासाद्य मुनिर्जातो विचक्षणः ॥४॥
 पुष्पदत्ता च सा राज्ञी ब्रह्मिलाख्यार्थिकान्तिके । आर्थिकारूपमादाय कुलैश्वर्यादिगर्विता ॥५॥
 अन्यासामार्थिकाणां च धर्मतत्त्वपराङ्मुखा । वन्दनां न करोति स्म धिङ्मूढानां कुचेष्टितम् ॥६॥
 तथासौ पुष्पदत्ताख्या मूढात्मा स्वशरीरके । सुगन्धद्रव्यकेनोच्चैः संस्कारं कुरुते स्म च ॥७॥
 तदा सा ब्रह्मिला प्राह जैनमार्गे विचक्षणा । आर्थिके पुष्पदत्ते भो तवेदं नैव युज्यते ॥८॥
 तच्छ्रुत्वा सापि दुष्टात्मा मायावाक्यं जगाद च । भो कान्तिके स्वभावेन सुगन्धं मे शरीरकम् ॥९॥
 यस्य चित्ते स्वयं नास्ति धर्मः श्रीमज्जिनेशनाम् । बोधितस्यापि दुष्टत्वा-त्तस्य दुष्कर्म पापिनः ॥१०॥
 एवं मायामहाशल्यमंडिता पुष्पदत्तिका । मृत्वा पापेन चम्पायां तद्राजश्रेष्ठिनो गृहे ॥११॥

४६. पुष्पदत्ता की कथा

अनन्त सुख के देने वाले और तीनों जगत् के स्वामी श्रीजनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर माया का नाश करने के लिए मायाविनी पुष्पदत्ता की कथा लिखी जाती है ॥१॥

प्राचीन समय से प्रसिद्ध अजितावर्त नगर के राजा पुष्पचूल की रानी का नाम पुष्पदत्ता था । राजसुख भोगते हुए पुष्पचूल ने एक दिन अमरगुरु मुनि के पास जिनधर्म का स्वरूप सुना, जो धर्म स्वर्ग और मोक्ष के सुख की प्राप्ति का कारण है । धर्मोपदेश सुनकर पुष्पचूल को संसार, शरीर, भोगादिकों से बड़ा वैराग्य हुआ । वे दीक्षा लेकर मुनि हो गए । उनकी रानी पुष्पदत्ता ने भी उनकी देखा-देखी ब्रह्मिला नाम की आर्थिका के पास आर्थिका की दीक्षा ले ली । दीक्षा ले-लेने पर भी उसे अपने बड़प्पन, राजकुल का अभिमान जैसा का तैसा बना रहा । धार्मिक आचार-व्यवहार से वह विपरीत चलने लगी और ओर आर्थिका को नमस्कार, विनय करना उसे अपने अपमान का कारण जान पड़ने लगा । इसलिए वह किसी को नमस्कारादि नहीं करती थी । इसके सिवा उस योग अवस्था में भी अनेक प्रकार की सुगन्धित वस्तुओं द्वारा अपने शरीर को सिंगारा करती थी । उसका इस प्रकार बुरा, धर्मविरुद्ध आचार-विचार देखकर एक दिन धर्मात्मा ब्रह्मिला ने उसे समझाया कि इस योगदशा में तुझे ऐसा शरीर का श्रृंगार आदि करना उचित नहीं है । ये बातें धर्मविरुद्ध और पाप की कारण हैं । इसलिए कि इनसे विषयों की इच्छा बढ़ती है । पुष्पदत्ता ने कहा-नहीं जी, मैं कहाँ श्रृंगार-विंगार करती हूँ । मेरा तो शरीर ही जन्म से ऐसी सुगन्ध लिए हैं । सच है-जिनके मन में स्वभाव से धर्म-वासना न हो उन्हें कितना भी समझाया जाये, उन पर उस समझाने का कुछ असर नहीं होता । उनकी प्रवृत्ति और अधिक बुरे कामों की ओर जाती है । पुष्पदत्ता ने यह मायाचार कर